स्थानीय लोकगीतों में झूलता हुआ भविष्यादर्शी सवेरा

डॉ. आरिफ जमादार
शनिवार पेठ, सोलापुर -४१३००२ महाराष्ट्र

विषय सार :
झूलों के गीतों में बचपन का वही सबक जो माँ के गोद से मिला हो या फिर झुलते हुए झुले में सुनाया गया हो, वह धिरे - धिरे बोये हुए दाने का बडा वृक्ष का रूप ले लेता है और कब छाँह के सौहार्द का नया प्रकरण लिखते बनेगा यह पता ही नहीं चलता। ममता की महानदी के किनारे ही बोयी हुई यह फसल जलाराय के दर्पण में आज चहेरा निहारने को प्यासी है। ऐसे में कटी या कटाई गयी फसल को सहारे का एक दस्त मिल जाए तो उफ्फान का गीत फिर बहरेगा - देखना; क्योंकि पहले वाणी की ध्वनि ही हर मनुष्य का इतिहास बनता हुआ दिखाई देता है। किसी ने क्या खूब कहा है कि, "माँ के गोदी में छिपी जुगनू की रौशनी ही सही सूरज का पता बताती है।" अंधेरे में चमकने वाले सितारे बहुत-से होते हैं लेकिन, बालार्क की रौशनी ही इन्सानी जिस्म के खारीज को दूर करती है। अतः यहाँ आवश्यक है कि, माँ के गोदी का हर एक शब्द बच्चे की अनुगूंजनता बने ताकि कल का उगने वाला सूरज अपनी जगह नही बल्कि, इन्सानी जरूरत पर अपनी रफ्तार बयान करने वाला बन जाए।

पद्धति:
इस शोधालेख के स्पष्टोक्ति के लिए सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया गया है।

आज 'लोक' शब्द के बहुतेरे प्रयोग मिलते हैं। 'लोक' शब्द का भाव है-'समस्त विश्व का एक प्रभाग जिसमें संसार का योग हो।' हम संसार को समष्टि का रूप मानते है। कल्पना के आधार पर समष्टिगत रस्म का बोध कराकर विराट-व्यापक व्योम की कल्पदृष्टि को कल के जीवसृष्टि का आकार जहाँ मिलता हो वहाँ 'लोक' का प्रकाशपथ ज्ञात होता है। 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम' का सीमित भाव नहीं बल्कि उसमें जीवित जीवन के अभ्यस्त की नई राह है ; जिसको समझना वक्त की मांग के साथ समय की जरूरत भी है। अपने परिवेश में झूले के गीतों में सिर्फ बच्चों के रोने की आवाज को थमाने का साधन नहीं वरन उसमें तो जीवन के हर शाख की व्याख्या भी दर्ज की गई है।

मनुष्य का जीवन अलग-अलग परिच्छेदों से संजोयी गई एक ऐसी अंखण्डित कहानी है, जिससे कहानी के अंत में नायक के गुणोत्कर्ष या गुणोपकर्ष का फैसला तय कराने में सहयोग देती है। निर्णय के समय हमारी स्मृति केद्रीत हो जाती है कि, अंत सुखांत है या दुखांत लेकिन, हम यह भूल जाते है कि अंत वैसा ही क्यों नही जैसी कहानी की पहल देखी गई थी! क्योंकि इस बात का पहला प्रमाण उस झुले का गीत है जिसमें कल का भविष्य सोया हुआ था; उसकी रौशनी उन्हीं कागजों पर लिखी जाएगी जो वक्त के रंगकूँजी में भिगोई गई होगी। मनुष्य का जीवन उस "लल्ला लोरी-लोरी दूध की कटोरी" से शुरु हुई कटोरी की खनक ही है, जो हाथ के ताल से पूरी होती है। यह तो चमच की दूरी तय करेगी कि दूध नायक के हलक के नीचे उतरकर विजयारथ का अनुभागी बनेगा या फिर, मूँह में जमें हुए दूध को 'फूर्रर्र' से उडा कर समाज रूपी बजर को बजाना है। माँ के गोद का सुना हुआ वह नींद का सहारा बच्चे के जीवन का सबसे बडा प्राक्कथन होता है क्योंकि, उसी प्राक्कथन पर कल के उगने वाले सूरज को अम्बर के सफाई की खबर मिलती है। डॉ. नामवर सिंह ने एक स्थान पर लिखा है कि- "आज भी स्त्रियों के गीतों में प्राचीनता की छाप अधिक है।"1 इस धारणा के पीछे एक कारण भी है, अगर मदरसा खडा करना है तो उस्ताद की परछाई साफ होनी चाहिए क्योंकि 'बच्चों का पहला मदरसा माँ का गोद ही होता है।'

सूखी मिट्टी में अगर सोने की फसल उगानी है तो जरुरी है सोने की पहरेदारी के लिए I.S.O नामकंन वाली मजबूत दिवार हो- जो धान कि पूरी यकिनी पहरेदारी का जिम्मा उठा ले। जहाँ तक समझा या देखा है, झूले के लोकगीतों में ही उस बच्चे के जीवन को आकार देता बनता है। डॉ. हरि सिंह पाल का कथन लोकगीत और मनुष्य जीवन के संदर्भ में बिल्कुल समीचीन लगता है- "लोक साहित्य विशेषत: लोकगीतो में माटी की स्वाभाविक सुगंध होती है और इनके माध्यम से हम मानव के आदिम रुप से परिचित होते हुए भी उसके विकास, उसके परिवर्तनों और प्रयत्नों को समझते हैं।"2 बच्चा अपने श्रवण के माध्यम से इन्ही गीतों के आधारपर अपने मानवी दिहंरा में बंद सूरत को आकार देने लगता है। लोकगीतों में वह गीत ही लीजिए, जिसमें माँ अपनी जरुरत को पूरी करने के लिए समय का सहारा चाहती है, लेकिन सहारे को समृद्धि का सपना दिखाते हूए-

"आगे-आगे गायी
दे-गे दूध मलाई
मेरे तान्हें को गे खलायी
लाल दूध पो की गे मलाई
मेरा तान्हा जो रोया तो
उसे बातो में समझाई
आगे-आगे गायी"

यहाँ माँ अपने मन कि दो महत्वपूर्ण बातें अपने गोद में पड़े हुए समय को सुनाना चाहती है:-

1. समय की समझ स्मृति के उलझनों से होती है।
2. मानवी व्यवहार की हकीकत हाल के अम्र की सच्चाई होती है।

तो वही गोद में पडा समय अपनी सायकोलाँजी से 'आगे-आगे' शब्द से बस! अपनी वक्त की जरूरत समझता है उसे तो आधे खाली ग्लास से कोई वास्ता ही नहीं आधे भरे ग्लास से ही वह उस वस्तु के अंतिम स्थिति को प्राप्त करने का अभ्यासी बन जाता है।

भारतीय परिवेश के स्थानीय लोकगीतों में समय की पूरी व्याख्या भविष्यादि शब्दलहरी से अनुप्रित कराई जाती थी। मनु भावनाओं का संबंध समय के धूरी से तराशी जाती है। और अक्सर लोकगीतों में बीते हुए दिनों की सारणी, वर्तमान की रहबरी और भविष्य के संजोए सपनों की इच्छा ही हमें नजर आती है। प्रकति ने अपने व्यापक सहृदयता का एक उदाहरण जहाँ नारी को बनाया है, तो वही 'श्रम' को स्त्री जीवन का त्यौहार भी घोषित किया है। यह नारी का श्रम 'गऊ' के उस दूध जैसा है जो रीजा में सर्वोत्तम है, तो वही; अपनी श्रेमीष्ठा से बंजर को गुलिस्ता करने वाली सानंदीवन भी। स्त्री के द्वारा समाजाऐधिक्य के लिए किए गए तप का ही यह नतीजा है कि खिले हुए गुलिस्ता के लिए हट्ठा-कट्ठा एक माली तो रखा गया; अगर स्त्री अपनी ममता के आँचल को फैलाएगी नही तो गोद में पडे हुए को सुखांत तो दरकिनार उसका भू-परिभ्रमण भी मूश्किल है। नारी अपनी सहृदयता को सुनाते हुए कहती है-

"घानी-मुनी धोर दे
पानी दमोर दे"

नारी को अपने हाथो से झूलते हुए दहलंबोदर को यह समझाना है कि,अपने जीवन कश्ती के सागर में सारथी के मुख कि सलाह भी एक गुरुपदेश का अर्थ देती है- बस; समय से उसे भापना यह झुले के रफ्तार पर आधारित होती है-

"मेरी बेटी बडी यलमदार
उनों पडेगे किताब....अ
घर को आएगें जब ओ
हसते रह जाएगे-अं...."

यकीनन गोद का बचपना ही अपने सुने हुए फूलाव को नए आकार का फूलरा विकसीत करने में सहयोग देता है। जीवन का 'रण' उसीका नाम है जहाँ 'बने हुए को बसाए, बसाए हुए को सुधारे और सुधारे हुए को सौंदर्य का वह अर्थ प्रदान करे जिससे समय की वाणी को सहयोग नहीं बल्कि सृष्टि के वजूद को स्मृति बहाल कर सके।

एक उदाहरण हम अपने रास्ते भटकते हुए कदमों में कभी हमने देखा भी होगा कि, रास्ते टहलते हूए वृद्ध मनुष्य की लाटी एक छोटा बच्चा होता है। वह लडखडाने वाले वृक्ष को प्यार के जल से तरोताजा बहारने को विवश करता है। वह, अपनी मासुमियत से उस वृद्ध का हाथ अपने कंधों पर रखकर आगे सीना-तान निकलता है: उसकी उस मासुमियत से कभी न रूकने वाली गड्डी भी अपने-आप रूककर उस बच्चे को 'पहले आप' का निमंत्रण देती है। अगर आप उस बच्चे को सवाल करे कि, वह उस वृद्ध का सहारा क्यों बना? तो उसका प्यारा-सा जबाब होगा कि- *"माँ कहती है बड़ो की दुआ लेता जा; दुआ लगने में देर ही क्यों न लगे लेकिन,फौरन तु देखेगा हाथ में मिठी गोली है या फिर चव्वनी।"* बच्चा भी कटिबद्ध होता है अपने सूने हुए को कृतिबद्ध करने में-

"मेरा राजा बेटा, कंधा देने
मेरी राणी बेटी, जग का मुँह ,खोलने
बेटा-बेटी क्या है, उनी दे सो फूल
मारुँगी न काँटूगी
उन्हें ऐसेच खिलने दूँगी
जब ओ खिलैगे बगीचा
मै भौरा बन उड जाऊँगी"

जीवन को सुखी बनाने का एक राजमार्ग इन्हीं गीतों में हमें प्राप्त होता है। अपने सहचर के साथ जीवनांद से लुफ्त उठाने का एक रास्ता झुले के निखार में ही लोकाभाव का एक अहम तत्व समाया हुआ है। परिवेश से बदलते हुए रिश्तों में पीयुष के कुछ छींटे मिल जाए तो कुदरत का बनाया हुआ और नुमाया हुआ रादला कैसे हो सकता है ! उसकों भी बच्चों के ध्वनि कृदंन मे बताया गया है-

"मेरे राजा, देर न कर आने में,
कब से खडी हुँ मै तेरी राह देखते
देख हाथ तु, बेलन डर न जाना
देख ले मुँह, फिर माला फेरना
थोडी देर में चम्पा चाय बनाएगी
बंधा जो कुदरत का करिश्मा
तुझसे दूर वह कैसे रह पाएगी।"

इन झूलों के स्थानीय लोकगीतों में जहाँ भाव-वार्ता का एक निश्चित शास्त्र है तो वहीं अपने जीवन को सिद्धांतों पर ढालने की एक समझ भी।

भाषा सौंदर्य का प्रयोग :

मुहावरे-1. दूध पर की मलाई खाना
2. किताब की समझ होना
3. भौंरा बन उड़ जाना

कहावतें- 1. बेलन का डर
2. घर को बाग बना देना

संदर्भ:

1. लोरी के गीत स्थानीय परिवेश के

सहायक ग्रंथ:

1. डॉ. नामवर सिंह, साहित्य की पहचान
2. डॉ. हरि सिंह पाल, लोक काव्य के क्षितिज

हिन्दी पर महापुरुषों के विचार

हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य को सर्वांगसुंदर बनाना हमारा कर्त्तव्य है।
- डॉ. राजेंद्रप्रसाद

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
- भारतेंदु हरिश्चंद्र

भाषा के उत्थान में एक भाषा का होना आवश्यक है। इसलिए हिन्दी सबकी साझा भाषा है।
- पं. कृ. रंगनाथ पिल्लयार

मैं मानती हूँ कि हिन्दी प्रचार से राष्ट्र का ऐक्य जितना बढ़ सकता है वैसा बहुत कम चीजों से बढ़ सकेगा।
- लीलावती मुंशी

हिन्दी उर्दू के नाम को दूर कीजिए एक भाषा बनाइए। सबको इसके लिए तैयार कीजिए।
- देवी प्रसाद गुप्त